मध्ययुगीन और उत्तर-मध्यकालीन भारत देश में प्रचलित जल संसाधन संरक्षण एवं प्रबंधन तकनीकियाँ और परम्पराएँ

अनिल कुमार मिश्र
जल प्रौद्योगिकी केंद्र, भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
ईमेल: dranilkumarmishra1@gmail.com

आज से लगभग 10-15 हजार वर्षों पूर्व मनुष्यों ने कृषि प्रधान जीवन शैली अपनाई और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक बस्तियों और समाजों का विकास करना आरंभ किया। जल मानव अस्तित्व से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है और सामाजिक और सांस्कृतिक विकास, परंपराओं, रीति-रिवाजों और धार्मिक मान्यताओं का स्रोत है। अधिकांश प्राचीन सभ्यताएँ, उदाहरण के लिए, सिंधु घाटी, मिस्र, मेसोपोटामिया और चीन, उन स्थानों पर विकसित हुईं जहाँ कृषि और मानव आवश्यकताओं के लिए आवश्यक जल आसानी से उपलब्ध था, अर्थात, झरनों, झीलों, नदियों और समुद्रों के आसपास जब उन्होंने आखेट करना छोड़ कर स्थायी कृषि अपनाई थी, तब सर्वप्रथम स्थायी बस्तियाँ ऐसी जगहों पर बनाईं, जो किसी न किसी जल स्रोत के आस-पास स्थित थे, जैसे; झील, पोखर, नदी अथवा तालाब; क्योंकि सभी निवासी जल संबंधी अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्हीं जल स्रोतों पर पूर्णतः निर्भर रहते थे। इन विकास कार्यों में मनुष्य की जल संसाधनों पर निर्भरता और उसके क्रिया कलापों तथा जल संसाधनों पर एक अनोखा संबंध स्थापित किया। चूँकि जल प्राचीन सभ्यताओं का प्रमुख प्रेरक था, विभिन्न प्रयोजनों के लिए जल के उपयोग के साथ-साथ इसके विभिन्न घटकों के जल विज्ञान चक्र, प्रकृति और पैटर्न की स्पष्ट समझ ने उन सभ्यताओं को हजारों वर्षों तक फलने-फूलने में मदद की।

अनावृष्टि और जलाल्पता तथा कृषि

जलाधिक्य और जलाल्पता तथा कृषि के बीच में जो नकारत्मक संबंध है वह सर्व विदित ही है। इस देश में दोनों ही परिस्थितियाँ एकांतर क्रम से आती जाती रहती हैं। किसी भी स्थान के वर्षा के वितरण को देखें तो हम पाते हैं कि पचासो वर्षो के इतिहास में वार्षिक वर्षा में भारी असमानता है। इसी प्रकार स्थानिक वितरण को देखें तो पाते हैं कि स्थान-स्थान भी भयानक असमानता से ग्रसित हैं। इस का क्या निष्कर्ष निकलता है ? इस का अर्थ यह है कि वर्षा का वितरण अत्यधिक आसमान और अनिश्चित है।

उन्नत कृषि हेतु जल का महत्त्व

कृषि के लिए सिंचाई एक अत्यंत आवश्यक आगत है । सभ्यता के आरंभ से ही भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। हमारे देश में आज भी लगभग समग्र जनसंख्या की जाविका किसी न किसी रूप में कृषि पर ही आधरित है। हम पूर्व मेन निरूपित कर चुके हैं कि हमारे देश में वर्षा के वितरण में क्षेत्रवार और समयवार भारी असमानता है। जहाँ एक ओर पश्चिमी राजस्थान में औसत वर्षा 100 मि.मी. है वहीं पर दूसरी ओर पश्चिमी मेघालय के चेरापूंजी में 11000 मि.मी. सामान्य वर्षा होती है । कतिपय वर्षो में बहुत कम वर्षा होने के कारण सूखे की स्थिति भी उत्पन्न होती रही है । उत्तरी भारत में गंगा का मैदानी भाग कृषि के लिए सर्वथा उपयुक्त माना जाता है लेकिन इस क्षेत्र में वर्षा

के न होने की स्थिति में अकाल पड़ने का लम्बा इतिहास रहा है।

जल की महत्ता का प्रतिपादन

जल की महत्ता का प्रतिपादन प्राकृत, पालि, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषाओं में विरचित ग्रन्थों में भरा पड़ा है, परंतु अधिकांश प्राचीन जल विज्ञान संबंधी ज्ञान अभी तक दुनिया भर में छिपा और अपरिचित रहा है। दुनिया भर की अन्य प्राचीन सभ्यताओं की तरह, जल प्रबंधन की आवश्यकता ने प्राचीन भारत में जलविज्ञान के विकास को प्रेरित किया। हमारे देश में वर्षा मानसून आधारित है। यद्यपि इस देश में प्राचीन काल से ही जल संसाधन संरक्षण और प्रबंधन की महान परम्पराएँ विकसित हुयीं और आज भी प्रचलन में हैं तथापि भारत देश में सिंचाई के लिऐ जल का मुख्य स्रोत वर्षा ही है।

वैदिक युग में जल विज्ञान

वैदिक युग में, भारतीयों ने यह अवधारणा विकसित की थी कि सूर्य की किरणों और हवा के प्रभाव से जलसूक्ष्म कणों में विभाजित हो जाता है, जो वायु स्तंभ (अदृश्य नालियों) द्वारा वायुमंडल में चढ़ जाता है; वहां, यह संघनित हो जाता है औरबाद में वर्षा के रूप में गिरता है (वायु पुराण , 51.14-16)। लिंग पुराण में जल विज्ञान चक्र के विभिन्न आयामों का भी विवरण दिया गया है। जल विज्ञान चक्र के पहलुओं में माहवार परिवर्तन का भी पता चला। पौधों द्वारा जल ग्रहण, जो हवा के संयोजन के साथ-साथ घुसपैठ के ज्ञान से सुगम होता है, प्राचीन साहित्य में प्रकट होता है। बृहत् संहिता में , एक पूरा अध्याय बादलों के निर्माण (गर्भलक्षणम्) के लिए समर्पित है। वर्षा ऋतु के गुणों और ग्रहों की गति तथा बादल संरचनाओं के साथ उनके संबंध पर एक विस्तृत चर्चा दी गई है। बृहत् संहिता में वर्षा की माप और वर्षामापी के आयामों पर भी चर्चा की गई है। अपने पूर्ववर्ती आलेख मेन मैंने वैदिक साहित्य और जल के सम्बन्धों पर गहन चर्चा की थी। इस आलेख में मैं मध्यकालीन भारत में जल संसाधनों के विकास और प्रबंधन पर आप सभी का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। जैसे जैसे सभ्यता का विकास होता गया मानव की अवश्यकता बढ़ती और बदलती गईं उसी प्रकार की प्रविधियाँ भी विकसित होने लगीं।

वैदिक युग में जल विज्ञान चक्र का ज्ञान

भारतीय संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर, इतिहास और परम्पराओं के आधार पर महान ऋषि और लेखक वराहमिहिर को प्राचीन काल का **"प्रथम जल वैज्ञानिक"** माना जाता है। वराहमिहिर द्वारा अपनी पुस्तक 'बृहत् संहिता' में विस्तार से वर्णित एक प्रमुख तथ्य भूमिगत जल के संकेतक के रूप में दीमकों की भूमिका है। भूमिगत जल की खोज के अतिरिक्त इस पुस्तक के अध्याय के कुछ छंद कुओं की खुदाई जैसे विषयों से संबंधित हैं; प्रचलित हवाओं के संदर्भ में उनका सरेखण; कठोर दुर्दम्य पथरीले स्तर से निपटना; पत्थर तोड़ने वाली छेनी को तेज़ करना और तड़का लगाना और उनका ताप उपचार करना; आपत्तिजनक स्वाद या गंध होने पर जल को जड़ी-बूटियों से उपचारित करना; लकड़ी, पत्थर लगाने और वृक्ष रोपण से बैंकों की सुरक्षा; और ऐसे अन्य संबंधित मामले। बृहत् संहिता के अध्याय 1, श्लोक II, बृहत् संहिता (वराहमिहिर) के अनुसार ***"अतीत के ऋषियों के विशाल कार्यों के सार की सही जांच करने के बाद, मैं एक स्पष्ट ग्रंथ लिखने का प्रयास करता हूं जो न तो बहुत लंबा है और न ही बहुत लंबा है।"*** इस से यह प्रतिपादित होता है कि वराहमिहिर से पूर्व भी यह ज्ञान प्रचलन में रहा होगा परंतु जैसी की प्रथा रही है किसी ने इसे लिपिबद्ध नहीं किया होगा। वृहत संहिता के नाम से ही यह ज्ञात होता है कि इस में पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों के द्वारा उपार्जित ज्ञान

का भी समावेश किया गया है। प्राचीन काल के हिन्दू शास्त्रों में भी सिंचाई एवं सिंचाई व्यवस्था के निर्माण में गहरी रुचि होने की झलक मिलती है जिनके बारे में हम अपने पूर्व आलेख में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। इस आलेख में हम मध्यवर्ती समय के भारत के जल ज्ञान के बारे में जानने का प्रयत्न करेंगे।

जैन और बौद्ध साहित्यों में जल की स्थिति

जैन साहित्य ने भी मौसम विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। " प्रजनापना " और " अवास्यका कर्निस " नामक विवरण विभिन्न प्रकार की हवाओं का उत्कृष्ट संदर्भ प्रदान करते हैं। अवस्याका कर्निस लगभग 15 प्रकार की हवाओं की एक सूची प्रस्तुत करता है, और प्रजनापना में वर्षा के रूप में बर्फबारी और ओलावृष्टि का भी उल्लेख है। बौद्ध साहित्य भी मौसम विज्ञान पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। " अपन्नक " नामक प्रथम जातक की कथा, में जलवायु संबंधी अनेक तथ्यों का विशद वर्णन किया गया है। जैन और बौद्ध कार्यों में बादलों की वास्तविक ऊंचाई का अनुमान लगाया गया है। प्राचीन भारतीयों (बृहत् संहिता) द्वारा कल्पना की गई मानसूनी हवाओं और उनके प्रभावों का ज्ञान आधुनिक जल-विज्ञान के अनुरूप है। इन तथ्यों से पता चलता है कि भारत में प्राचीन काल में मौसम विज्ञान सहित जल विज्ञान और संबंधित प्रक्रियाओं का समृद्ध ज्ञान था, जो आधुनिक जल विज्ञान के बराबर है। बौद्ध साहित्य बादलों के दो सामान्य वर्गों का उल्लेख करता है: मानसूनी बादल और तूफानी बादल या आकस्मिक बादल। संयुक्त निकाय बादलों को पांच श्रेणियों में वर्गीकृत करता है: जैसे; (i) ठंडे बादल, (ii) गर्म बादल, (iii) गरजने वाले बादल, (iv) पवन बादल - जो वायुमंडल में संवहन धारा की गतिविधि के कारण बनते हैं, और (v) वर्षा वाले बादल - संभवतः क्यूम्यलोनिम्बस, जो प्रचुर मात्रा में वर्षा लाता है।

मौर्य काल और के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा

"अर्थशास्त्र" का श्रेय कौटिल्य को दिया जाता है जिन्हें हम चाणक्य के नाम से जानते हैं और जो मौर्य वंश के संस्थापक सम्राट चंद्रगुप्त (300 ईसा पूर्व) के मुख्यमंत्री भी थे। इसमें शीतलन उपकरण का उल्लेख किया गया है जिसे " वेरियंत्र " कहते थे। लगभग 300 ईसा पूर्व मेगस्थनीज नामक एक प्राचीन यूनानी इतिहासकार ने भारत भ्रमण के साथ-साथ महाराज चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार का दौरा भी किया था। उन के अनुसार, वेरियन्त्र नमक यंत्र का का उपयोग समाज के धनी वर्गों द्वारा हवा को ठंडा करने के लिए किया जाता था। अर्थात उस समय **" वेरियंत्र "** (हवा को ठंडा करने के लिए घूमने वाला जल का स्प्रे) नमक वॉटर कूलर का आविष्कार हो चुका था।

मौर्य काल में वर्षा का मापन

मौर्य काल के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा के वितरण का वर्णन करना संभव था। दुनिया भर में पहली वेधशाला की स्थापना का श्रेय मौर्यों को दिया जाता है। तिब्बती वर्षाछाया क्षेत्र का शुष्क क्षेत्र और ध्रुवीय हवाओं के कारण वर्षा न होना जैसे आधुनिक मौसम संबंधी तथ्य पुराणों में व्यापक रूप से शामिल हैं। पाणिनि (700 ईसा पूर्व) के अर्थशास्त्र और अष्टाध्यायी में वर्षामापी का उल्लेख मिलता है, जिन्हें चौथी या तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में मगध देश (दक्षिण बिहार) में मौर्य शासकों द्वारा पेश किया गया था। पाणिनि को पहली वेधशाला की स्थापना का श्रेय भी दिया जाता है। छठी शताब्दी ईस्वी के अंत तक इस प्रणाली का उपयोग बाद के शासकों द्वारा किया जाता रहा। मौर्य काल के दौरान,

वर्षामापी को " वर्षमान " के नाम से जाना जाता था। अर्थशास्त्र में , वर्षामापी के निर्माण का वर्णन इस प्रकार किया गया है "भंडार गृह के सामने, एक कुंड (कुंडा) जिसका मुंह एक अरत्नी जितना चौड़ा (24 अंगुल = 18 इंच लगभग) वर्षामापी के रूप में स्थापित किया जाएगा।" "। हालाँकि, अर्थशास्त्र में वर्षामापी की ऊंचाई के बारे में कोई जानकारी नहीं है। इस वर्षामापी का उपयोग 600 ईस्वी के अंत तक बाद के शासकों द्वारा प्रभावी ढंग से किया जाता रहा। मौर्य काल में विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा का वितरण सर्वविदित था। अर्थशास्त्र में निम्नलिखित का उल्लेख है। जांगला देश (रेगिस्तानी प्रदेश) में वर्षा की मात्रा 16 द्रोण होती है ; अनुपनम (नम क्षेत्र) में आधे से भी अधिक ; उन क्षेत्रों के रूप में जो कृषि के लिए उपयुक्त है अस्मक (महाराष्ट्र) के क्षेत्रों में 13.5 द्रोण; अवंती (संभवतःमालवा)में 23 द्रोण;और अपारंतनम (पश्चिमी क्षेत्र, कोंकण का क्षेत्र) में एक विशाल मात्रा; हिमालय की सीमाएँ और वे देश जहाँ कृषि में उपयोग के लिए जल चैनल बनाए गए हैं ।

वर्षा क्षेत्रों के वर्गीकरण की कौटिल्य की पद्धति

कौटिल्य की पुस्तक "अर्थशास्त्र", मौर्य साम्राज्य की अवधि के दौरान सिंचाई और अन्य उद्देश्यों के लिए निर्मित जल संबंधी (हाइड्रोलिक) संरचनाओं का एक विस्तृत विवरण भी देती है। इस पुस्तक में वार्षिक औसत मात्रा के संबंध में वर्षा क्षेत्रों के वर्गीकरण की कौटिल्य की पद्धति वस्तुतः उल्लेखनीय है। वर्षा की भिन्नता के भौगोलिक विवरण की चर्चा करते हुए उसमें बताया गया है कि ***"जब वर्षा ऋतु के आरंभ और समाप्ति दोनों महीनों में वर्षा की अपेक्षित मात्रा की एक तिहाई और मध्य में दो तिहाई वर्षा होती है, तब वर्षा एकसार अथवा समान या सम होती है जिसे बहुत सम माना जा सकता है इस के विपरीत आसमान वार्षिक वर्षा होना निर्धारित किया जा सकता है।"*** और वह एकमात्र शास्त्रीय लेखक हैं जो लगभग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को ध्यान में रखते हुये इस पक्ष को उद्घाटित करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में दी गई वर्षा मापने की पद्धति वही है जो आज हमारे पास है; अंतर केवल इतना है कि वर्षा जल को वजन इकाइयों में व्यक्त किया गया था और आज कल गहराई से वर्षा जल की भविष्यवाणी करने का विज्ञान भी अनुभवजन्य विकास के रूप में अस्तित्व में आया रहा होगा। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में आगे उल्लेख किया गया है कि **"बृहस्पति की स्थिति, गति और गर्भावस्था (गर्भाधान), शुक्र के उदय, अस्त और गति को देखकर वर्षा का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है ; और सूर्य के प्राकृतिक या अप्राकृतिक पहलू द्वारा। शुक्र ग्रह की गति से भी वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है।"** बादलों के वर्गीकरण और उनकी जल धारण क्षमता (वायुमंडलीय नदियों की अवधारणा के बराबर) और वर्षा पैटर्न और कृषि के अंतर्संबंध पर विस्तृत विवरण भी अर्थशास्त्र में पाया जा सकता है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैदिक युग के दौरान और उसके बाद महाकाव्यों और पुराणों के युग में (अर्थात, 3000 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक), जल विज्ञान चक्र का ज्ञान, भूजल और जल ज्ञान-विज्ञान की गुणवत्ता अत्यधिक उन्नत थी, यद्यपि उस समय के लोग आधुनिक समय के परिष्कृत उपकरणों के बिना, पूरी तरह से प्रकृति के अपने अनुभव पर निर्भर थे।

वैदिक काल में भू – जल की भविष्यवाणी करने का विज्ञान

हड़प्पा सभ्यता के अंतिम चरण से लेकर मौर्य काल के अंतिम चरण तक जल विज्ञान पर किए गए कार्यों की समीक्षा के आधार पर, यह बहुत ही निश्चितता से स्थापित किया जा सकता है कि प्राचीन भारतीय लोग बादलों के निर्माण, वर्षा की भविष्यवाणी और उसके माप, भूमिगत जल-धारण संरचनाओं, उच्च और निम्न जल के बारे में सम्यक ज्ञान रखते थे। विभिन्न स्थानों पर जलभृत, जलभृत की गहराई (अकुइफ़र, वॉटर टेबल), गर्म और ठंडे झरने, खुले कुओं के माध्यम से भूजल का उपयोग, विभिन्न प्रकार के कुओं के निर्माण के तरीके और उपकरण, भूमिगत जल की गुणवत्ता और यहां तक कि स्वतः प्रवाहित होने वाले (आर्टीशियन) कुआं योजनाएं। इससे पता चलता है कि जल विज्ञान चक्र, भूजल और जल की गुणवत्ता की अच्छी तरह से विकसित अवधारणाएँ प्राचीन भारतीयों को उन प्राचीन काल में ज्ञात थीं, जबकि समकालीन दुनिया अभी भी जल के वितरण पर अवैज्ञानिक विचारों से जूझ रही है।

पूर्व मध्ययुगीन भारत में जल प्रबंधन तकनीक

सामाजिक-सांस्कृतिक समाजों, कृषि प्रतिष्ठानों और स्थायी बस्तियों के विकास से मनुष्यों और जल के बीच एक अद्वितीय संबंध स्थापित हुआ विद्वानों नें पूर्वी और पश्चिमी गोलार्ध के उदाहरणों के साथ प्राचीन सामाजिक संरचनाओं और संगठनों पर जल प्रबंधन प्रथाओं के प्रभावों पर चर्चा की। भारत में सभ्यता नदियों और डेल्टाओं के आसपास विकसित हुई जैसी दुनिया के कई अन्य हिस्सों में जैसी नील नदी घाटी सभ्यता। इसी कारण से नदियाँ हमारे देश की राष्ट्रीय संस्कृति, विरासत और विकास का स्थायी प्रतीक बनीं। मोहेनजोदारों और हड़प्पा (या सिंधु घाटी सभ्यता), जो 2600-1900 ईसा पूर्व या लगभग 5000 आविर्भूत हुयी थी। इस सभ्यता के स्वर्णिम काल में 5000-1000 वर्षों पूर्व एक महान सभ्यता पुष्पित और पल्लवित हुयी थी जिस की बराबरी अभी तक कोई नहीं कर सका है। यह सभ्यता अत्यधिक समृद्ध थी जिस में सुव्यवस्थित नगर, मार्ग, अनाज रखने के गोदाम और बड़े बड़े सार्वजनिक स्नानगार भी थे। सार्वजनिक और निजी स्नानघर, सटीक ईंटों से निर्मित भूमिगत नालियों के माध्यम से जल निष्कासन (सीवरेज सिस्टम) तंत्र का एक सुनियोजित संजाल (नेटवर्क), और कई जलाशयों और कुओं के साथ एक कुशल जल प्रबंधन प्रणाली इस सभ्यता के लोगों ने आज से हजारों वर्षों पूर्व ही विकसित कर ली थी। हड़प्पा सभ्यता के नागरिक जल के प्रति अपने समर्पण के लिए विख्यात थे। वे नदियों को दैवीय दर्जा देते थे और प्रतिदिन नदियों से प्रार्थना भी करते थे जैसा की हम आज भी गंगा, यमुना, नर्मदा इत्यादि की करते हैं। शहरी केंद्रों को अत्याधुनिक नागरिक और वास्तुशिल्प डिजाइनों के साथ परिष्कृत जल निकासी और अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणालियों के प्रावधानों के साथ विकसित किया गया था। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना रोचक है कि जल और अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणालियाँ सभ्यताओं के सभी युगों के दौरान समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और धार्मिक तरीकों के लिए अत्यधिक अनुकूल रही हैं। हड़प्पा सभ्यता में "एकल राज्य" की अवधारणा नहीं थी जैसा कि मेसोपोटामिया सभ्यता जैसी अन्य समकालीन सभ्यताओं द्वारा प्रचलित थी, जो महलों और मंदिरों के केंद्रीकृत नियंत्रण के साक्ष्य की ओर इशारा करती है। हड़प्पा समाज सत्ता की साझा अवधारणाओं पर आधारित था; इस समाज में सैन्य विजय का प्रभुत्व और पैटर्न नहीं पाया गया है। यद्यपि जब भाषाविद मुहरों, ताबीजों और मिट्टी के बर्तनों पर अंकित हड़प्पा लिपि को समझ लेंगे तो अधिक जानकारी दुनिया के सामने आ जाएगी। इस विषय पर उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि सिंधु

लोगों ने नागरिक, वास्तुशिल्प और भौतिक विज्ञान के अनुकरणीय मिश्रण के साथ उस प्राचीन काल में सबसे स्मार्ट शहरी केंद्रों में से एक विकसित किया था।

प्राचीन भारत में उन्नत सिंचाई प्रणालियों का विकास

वेदों, विशेष रूप से ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में जल चक्र और संबंधित प्रक्रियाओं के कई संदर्भ हैं, जिनमें जल की गुणवत्ता, हाइड्रोलिक मशीनें, जल-संरचनाएं और जल प्रबंधन के लिए प्रकृति-आधारित समाधान (एनबीएस) शामिल हैं। हड़प्पा सभ्यता प्राचीन भारत में जल विज्ञान के विकास के उन्नत स्तर का प्रतीक है जिसमें परिष्कृत हाइड्रोलिक संरचनाओं का निर्माण, केंद्रीकृत और विकेंद्रीकृत अवधारणाओं पर आधारित अपशिष्ट जल निपटान प्रणाली और अपशिष्ट जल उपचार के तरीके शामिल हैं।

प्राचीन भारत में उन्नत सिंचाई प्रणालियों के विकास से जटिल शहरी समाजों और केंद्रों का विकास हुआ। सिंधु घाटी सभ्यता हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग में अग्रणी थी और दुनिया में फ्लश शौचालयों की सबसे पुरानी ज्ञात प्रणाली विकसित करने के लिए जानी जाती है। केनोयर नमक एक वैज्ञानिक का कहना है कि **"प्राचीन दुनिया के किसी अन्य शहर ने इतनी परिष्कृत जल और अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली विकसित नहीं की थी। यहां तक कि लगभग 2000 साल बाद रोमन साम्राज्य के दौरान भी, इस प्रकार की सुविधाएं उच्च वर्ग के पड़ोस तक ही सीमित थीं।"**

पूर्व-मौर्य काल में जल संसाधनों के प्रबंधन की प्रविधि:

मौर्य साम्राज्य (~322-185 ईसा पूर्व) को पहली "हाइड्रोलिक सभ्यता" के रूप में श्रेय दिया जाता है और इसकी विशेषता स्पिलवेज़, जलाशयों और स्पिलवेज़ (पाइनस और अहार) से सुसज्जित चैनलों के साथ बांधों का निर्माण है; उन्हें जल संतुलन, जल मूल्य निर्धारण प्रणालियों के विकास, वर्षा की माप और विभिन्न जल विज्ञान प्रक्रियाओं का ज्ञान भी था। जैसे-जैसे हम पौराणिक कथाओं सहित प्राचीन भारतीय साहित्य में जल विज्ञान कार्यों के संदर्भों की गहराई से जांच करते हैं, भारतीय वैज्ञानिक योगदान के कई आकर्षक आयाम सामने आते हैं। यह समीक्षा जल प्रबंधन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करती है, इतिहास, पुरातत्व, जल विज्ञान और हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग और संस्कृति जैसे विषयों की खोज करती है और सिंधु नदी के पूर्व में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के भौगोलिक क्षेत्र को कवर करती है। समीक्षा में परिपक्व हड़प्पा चरण से लेकर वैदिक काल और मौर्य साम्राज्य तक की अवधि को शामिल किया गया है।

सन 300 वर्ष ईसा पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा में सेल्यूकश के राजदूत मेगास्थनीज ने भारत में सिंचाई व्यवस्था पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि ***"उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष में अच्छी सिंचाई व्यवस्था थी।"*** ''कौटिल्य'' ने भी अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में राजा को सलाह दी है कि शत्रुओं पर विजय पाने के लिए शत्रु राज्य की भूमि को, उनके राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत बने बाधों नहरों एवं तटबन्धों को तोड़कर, जलप्लावित कर दो। कौटिल्य ने नहरों एवं बांधों का उल्लेख अन्य संदर्भों में भी किया है। उनके अर्थशास्त्र में यह उल्लेख मिलता है कि नदियों, झीलों, बॉधों एवं मशीन चलित कुओं से जल के उपयोग पर कृषि उत्पादन के चौथाई अंश को राजस्व के रूप राजा को देना होता था। यदि निजी बॉधों का रखरखाव पॉच वर्षों तक उपेक्षित रहता था तो राज्य द्वारा उनको अपने अधीन कर लिया जाता

था। यदि किसी बॉध आदि का निर्माण जनता के सहयोग से किया जाता था तो उस स्थिति में 4 वर्ष तक राजस्व कर में छूट दी जाती थी।

जल संसाधनों के प्रबंधन के प्राचीन तरीके: उत्तर-मौर्य काल

कई राजवंशों ने जल एकत्रित करने के लिए सिंचाई की नहरें (चैनल), जलाशय और कुएँ बनवाए। मौर्य सम्राटों ने नई स्थापित बस्तियों के लिए सिंचाई प्रणाली और कुओं का निर्माण किया। अर्थशास्त्र जल संसाधनों, वर्षा पैटर्न और सिंचाई प्रौद्योगिकियों पर जानकारी प्रदान करता है। इस प्रकार की संरचनाओं का विवरण निम्नांकित है:

- प्रयागराज के निकट श्रृंगवेरपुर में पहली शताब्दी ईसा पूर्व में बनाया गया एक टैंक हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका निर्माण गंगा नदी पर बाँध बनाकर किया गया था। इस आकार का एक टैंक 250 मीटर से अधिक लंबा है।
- सुदर्शन झील एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह गुजरात के गिरनार क्षेत्र में था और तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व का है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय एक अधिकारी पुष्यगुप्त ने प्रारम्भिक निर्माण प्रारम्भ कराया। सन 150 ई.पू. के जूनागढ़ के गिरनार शिलालेख में इसका विवरण मिलता है।
- अशोक के शासन काल में यवनराज तुषास्फ ने जलमार्गों का निर्माण कराया। चार शताब्दियों के बाद, उज्जैन के शक राजा रुद्रदामन ने सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार किया।
- 455 ई. में स्कंदगुप्त के शासनकाल का एक शिलालेख बाद के समय में भी इसके अस्तित्व की पुष्टि करता है।
- झील की सीमा को स्थानीय शहर के गवर्नर चक्रपालित ने बहाल किया था। झील का आधार 100 फीट मोटा था।
- महामेघवाहन वंश के सबसे महान सम्राट खारवेल ने हाथीगुम्फा शिलालेख जारी किया। उसने अपने महल के लिए जलकी नहर बनाने में बहुत पैसा खर्च किया।
- नहपान के दामाद और वायसराय उषावदत (लगभग 121 ई.) ने कई जलाशयों और टैंकों का निर्माण कराया। मथुरा का एक शिलालेख (लगभग 50 ई.पू.) एक ब्राह्मण का सम्मान करता है जिसने एक टैंक का निर्माण किया था।

गुप्त और गुप्तोत्तर काल के दौरान जल संसाधन

कुओं से जल को खींचना और उसे खोदी गई नहरों के माध्यम से खेतों में वितरित करना एक सामान्य सिंचाई पद्धति थी।

- एक उपकरण जिसका उपयोग गुप्त युग से पहले किया गया होगा, उसमें बर्तनों को पतवार की जल रेखा के नीचे फैली एक श्रृंखला से जोड़ना शामिल था। इस उपकरण को अरघट्टा या घट्टि-यंत्र (घट का अर्थ बर्तन) कहा जाता था।
- हर्षचरित में कृषि क्षेत्रों की सिंचाई के लिए घटी-यंत्र के उपयोग का एक लंबा विवरण शामिल है।
- स्वाभाविक रूप से, किसानों के लिए मुख्य जल संसाधन वर्षा थी, जिसका महत्व अर्थशास्त्र और गुप्त युग के कई कार्यों में स्पष्ट है। बंगाल जैसे क्षेत्रों में, वर्षा जल को तालाबों और अन्य जलाशयों में एकत्र किया जाता था और सिंचाई के लिए उपयोग किया जाता था। टैंक सिंचाई अंततः प्रायद्वीपीय

भारत में मानक बन गई। परिणामस्वरूप, सिंचाई की कई विधियाँ और प्रणालियाँ अस्तित्व में आईं। ईसा से 400 वर्ष पूर्व महाराजा नंद द्वारा एक जल सेतु का निर्माण किया गया था जो कि काफी लम्बे समय तक उपेक्षित रहा। ईसा के 100 वर्ष पूर्व उड़ीसा के महान शासक खारवेल द्वारा इस जल सेतु को पुन: उपयोग में लाये जाने योग्य बनाया गया। आज से लगभग 1700 वर्ष पूर्व मद्रास के स्थानीय अभियन्ताओं द्वारा तंजौर जिले में शानदार एनीकट (वियर) का निर्माण कराया गया जो कि इस तरह के कार्य का पहला उदाहरण था।

ब्रिटिश काल के पूर्व एवं मुग़ल काल:

सिरसा नहर प्रणाली (तंत्र)

उत्तरी भारत में सिन्धु एवं गंगा जैसी सदानीरा नदियों के होने के कारण उसके जलको आप्लवनी (Inundation) नहरें बनाकर सिंचाई के लिए उपयोग करना अपेक्षाकृत आसान था। भारत की मुख्य आप्लवनी नहरें सिन्धु नदी एवं इसकी पाँच सहायक नदियों से निकाली गयी। ऐसा कहा जाता है कि इन आप्लवनी नहरों का निर्माण अफगान शासकों द्वारा कराया गया था। पंजाब प्रान्त में इस प्रकार की आप्लवनी नहरों की कुल लम्बाई 480 कि.मी. के आसपास थी और सिन्धु प्रान्त में आप्लवनी नहरों की लम्बाई लगभग 4160 कि.मी. थी और इनसे लगभग 6.8 लाख हेक्टेयर फसलों की सिंचाई होती थी। पंजाब एवं सिन्धु प्रान्तों में 19 वीं शताब्दी के अन्त तक इस भूभाग की लगभग 12.0 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई इन आप्लवनी नहरों पर निर्भर रहने लगी। इन नहरों का रखरखाव एवं प्रबन्धन सरकार द्वारा किया जाता था।

फिरोज नहर / दिल्ली नहर प्रणाली (तंत्र)

उत्तरी भारत में सबसे पहले यमुना के दोनों तटों से नहर निकालने का कार्य किया गया। यमुना के पश्चिमी तट से निकाली गयी नहर का निर्माण 14वीं शताब्दी के मध्य फिरोजशाह ने हिसार के निकट स्थित अपने शिकारगाह की सिंचाई करने हेतु कराया था। नहर के रखरखाव पर समुचित ध्यान न दिये जाने के कारण यह नहर उपयोग के योग्य नहीं रह गयी, लेकिन 16वीं शताब्दी में अकबर महान द्वारा इस नहर के पुर्नस्थापना के आदेश दिये गये। तत्पश्चात 17वीं शताब्दी के आरम्भ में शाहजहॉ द्वारा पत्थरों को काटकर एवं जल सेतु का निर्माण कराकर अपने प्रतिभाशाली सहायक अलीमर्दनखॉ की सहायता से इस नहर को शाहजहानाबाद (दिल्ली) तक लाया गया। निर्माण के लगभग 125 वर्ष बाद तक यह दिल्ली नहर दक्षतापूर्वक कार्य करती रही। साम्राज्य के असंगठित हो जाने के कारण फिरोज नहर में 1707 से जलचलना बन्द हो गया तथा 18वीं शताब्दी के मध्य तक मुगल नहर का अस्तित्व भी प्राय: समाप्त हो गया। इस प्रकार लगभग 400 वर्ष तक ज्यादा या कम दक्षता से चलने वाली यह नहर प्रणाली अन्तिम रूप से समाप्त हो गयी।

पूर्वी और पश्चिमी यमुना नहरें

यमुना नदी के बायें तट से निकलने वाली पूर्वी यमुना नहर, जिसे दोआब नहर के रूप से भी जाना जाता है, का श्रेय अलीमर्दनखान को जाता है। इस नहर के शीर्ष का निर्माण शिवालिक पहाड़ियों पर स्थित है तथा यह नहर शाहजहॉ के शिकारगाह **'बादशाह महल'** से हो कर जाती थी। नहर के शीर्ष पर गम्भीर प्रकृति कठिनाइयों, जिनका निवारण मुगलकाल के अभियन्ताओं द्वारा सम्भव नहीं हो सका के कारण यह नहर एक सीजन से अधिक अवधि के लिए नहीं चल पायी। वर्ष 1780 में 'जबीलाखान रोहिला' द्वारा इस नहर को पुन: चलाया गया दुबारा

खोदने के पश्चात् यह नहर मात्र कुछ महीने ही चल सकी।

उपसंहार

जल प्रकृति की बहुमूल्य देन है। जल प्राचीन काल से ही मानव अस्तित्व तथा सभ्यता का विकास से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। जल स्रोत या जल संसाधन हमारे जीवन के लिए आवश्यक उपादानों, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास, परंपराओं, रीति-रिवाजों और धार्मिक मान्यताओं का मूल है। अब तक सभी शहरों, मानव बस्तियों की स्थापना किसी न किसी जल स्रोत के निकट ही हुई है। मनुष्यों ने लगभग 10,000 साल पहले कृषि प्रधान जीवन शैली अपनाई, स्थायी बस्तियाँ बनाईं एवं समाज का निर्माण हुआ। जब उन्होंने और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक समाजों और बस्तियों का विकास करना आरंभ किया, तो वे किसी न किसी तरह से बड़े पैमाने पर जल संसाधनों पर ही निर्भर थे। अधिकांश प्राचीन सभ्यताएँ, उदाहरण के लिए, सिंधु घाटी, मिस्र, मेसोपोटामिया और चीनी सभ्यताएँ, उन स्थानों पर विकसित हुईं जहाँ कृषि और मानव आवश्यकताओं के लिए आवश्यक जल आसानी से उपलब्ध था, अर्थात, झरनों, झीलों, नदियों और समुद्रों के आसपास. चूँकि जल प्राचीन सभ्यताओं का प्रमुख प्रेरक था, विभिन्न प्रयोजनों के लिए जल के उपयोग के साथ-साथ इसके विभिन्न घटकों के जल विज्ञान चक्र, प्रकृति और पैटर्न की स्पष्ट समझने, उन सभ्यताओं को हजारों वर्षों तक फलने-फूलने में मदद की। इन विकासों ने मनुष्य और जल के बीच एक अनोखा संबंध स्थापित किया है। जल के बिना जीवन तथा सभ्यता के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने अपना पहला निवास, पहले ग्राम, सर्वप्रथम स्थायी बस्तियाँ बनाईं वहीं बनाया जहॉ पर पेय जल आसानी से उपलब्ध था। जल संसाधनों के समुचित प्रबंधन एवं रख रखाव की आवश्यकता पड़ती है जिसके बिना अच्छी से अच्छी व्यवस्थाएं भी समय के साथ ध्वस्त हो जाती हैं। इस लिए आज कल के समाज से यह अपेक्षा की जाती है की यथा संभव जल संरचनाओं की सुरक्षा एवं सुधार करें एवं आवश्यकतानुसार नवीन संरक्षण एवं संग्रह प्रणालियों का विनिर्माण करें तभी जल सुरक्षा स्थाई हो सकती है।

***